https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

1. ARTISTIC MOTIFS IN THE FOLK FESTIVALS OF UTTAR PRADESH AND BIHAR (उत्तर प्रदेश एवं बिहार के लोक पर्वों में कलागत अभिप्राय)

Diksha Singh[a]*

[a] *Research Scholar, Department of Visual Arts, University of Allahabad, Prayagraj, Uttar Pradesh*

[a]*Email:* diyaartist1994@ gmail.com

Abstract

Indian culture is one of the oldest and richest cultures in the world. Cultural diversity plays a major role in its richness. The major states of North India, Bihar and Uttar Pradesh, hold a prominent place in preserving and promoting cultural values and heritage such as traditions, beliefs, and ideas. The art of this region has incorporated other modern cultural attributes while never abandoning its fundamental essence. Indian folk arts are a pictorial history of the religious sentiments of the entire society, known as the intangible cultural heritage of humanity. Art has always been an integral part of Indian culture and tradition. Culture finds its expression through art.

The land of Uttar Pradesh and Bihar has been renowned since ancient times for taking art, painting, and cultural heritage to its zenith. The folk arts of this region serve as an ideal mirror not only for India but for the entire world, which other art forms emulate. Chowk Purna and Sanjhi art of Uttar Pradesh, and Madhubani, Manjusha, and Tikuli art of Bihar, continue to keep Indian tradition and culture alive even today. The folk festivals celebrated in these regions include Ram Navami, Holi, Raksha Bandhan, Dussehra, Diwali, Nag Panchami, Chhath Puja, Makar Sankranti, and Govardhan Puja, during which the women of the household, with immense devotion, create exquisite artworks for decorating their homes. These creations are an expression of their inner selves and a reflection of society. This decoration is known as the folk art of the region. Folk arts are primarily associated with rural areas, where the true aesthetic essence of these arts can be witnessed. Such a powerful manifestation is rarely seen in urban life. In folk art, certain artistic elements such as symbols, ornaments, geometric motifs, and human figures are depicted during festivals and weddings, each having its own specific religious significance. These art forms are playing a crucial role in preserving and promoting the culture and traditions of the region from generation to generation. Through these arts, various dimensions of the culture and civilization of that place are reflected.

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीनतम् एवं समृद्ध संस्कृति है। यहां की समृद्ध संस्कृति में सांस्कृतिक विविधता का प्रमुख योगदान है। उत्तर भारत के प्रमुख राज्य बिहार तथा उत्तरप्रदेश परंपराओं, आस्थाओं, मान्यताओं, और विचारों जैसे सांस्कृतिक मूल्यों एवं विरासत को आगे बढ़ाने में प्रमुख स्थान रखते हैं। यहाँ की कला ने आधुनिकता के अन्य सांस्कृतिक गुणों को अपने में समाहित किया, साथ ही अपने अस्तित्व के मूल दामन को भी कभी नहीं छोड़ा। भारतीय लोककलाएं संपूर्ण समाज की धार्मिक भावनाओं का चित्रित इतिहास है, जो मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में जानी जाती हैं। कला सदैव ही भारतीय संस्कृति एवं परंपरा की सहचारी रही हैं। कला के माध्यम से ही संस्कृति को अभिव्यक्ति मिलती है।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार की धरती प्राचीन काल से ही कला, चित्रकला तथा सांस्कृतिक विरासत को शीर्ष बिंदु तक पहुंचाने के लिए प्रसिद्ध रही है। यहां की लोक कलाएं भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के समक्ष एक आदर्श दर्पण हैं, जिसको अन्य कलाएं भी आदर्श मानकर अनुसरण करती हैं। उत्तर प्रदेश की चौक पूरना, सांझी कला तथा बिहार की मधुबनी, मंजूषा एवं टिकुली कला आज वर्तमान में भी भारतीय परंपरा एवं संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं। इन क्षेत्रों में प्रचलित लोक पर्वों में रामनवमी, होली, रक्षाबंधन, दशहरा, दीपावली, नाग पंचमी, छठ पूजा, मकर संक्रांति, गोवर्धनपूजा आदि सम्मिलित है, जिसमें घर की महिलाएं प्रमुखता से संपूर्ण आस्था के साथ घर की साज-सज्जा के लिए उत्कृष्ट कलाकृतियों का निर्माण करती हैं, यह कृतियां उनके अंतर्मन की अभिव्यक्ति हैं, जो समाज का प्रतिबिंब है। यही सजावट वहां की लोक कला के नाम से जानी जाती हैं। लोक कलाएं प्रमुख रूप से ग्रामीण अंचलों से अधिक संबंधित है, यहाँ इन कलाओं के मूल सौंदर्यात्मक प्राण को देखा जा सकता है। जिसका इतना प्रभावशाली दर्शन शहरी जीवन में अपवाद मात्र है। लोक कला में पर्व तथा शादी-विवाह में कुछ कलात्मक तत्वों जैसे प्रतीक, अलंकरणों, ज्यामिति अभिप्राय एवं मानवाकृतियों का अंकन किया जाता है, इसका अपना एक विशिष्ट धार्मिक महत्व है। यह कलाएं पीढ़ी दर पीढ़ी वहां की संस्कृति एवं परंपरा को आगे बढ़ाने के साथ-

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly
साथ संस्कृति को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन कलाओं के माध्यम से उस स्थान की संस्कृति एवं सभ्यता के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं।

Keywords: Folk festivals, folk art, folk arts of Uttar Pradesh and Bihar, artistic motifs
लोक पर्व, लोक कला, उ0प्र0 एवं बिहार की लोक कलाएं, कलात्मक अभिप्राय

---

* Corresponding author.

प्रस्तावना

भारत की संस्कृति एवं परंपरा प्राचीन काल से ही अत्यंत गौरवशाली एवं समृद्ध रही है प्राचीन काल से ही यहाँ की सभ्यता, संस्कृति एवं इसकी समृद्ध परंपरा किसी भी एक धर्म, जाति, समुदाय, संप्रदाय, संस्कृति एवं परंपरा के बंधन में नहीं बंधी। प्रागैतिहासिक मानव ने अपनी गूढ़ भावनाओं को अत्यंत सहज रूप में व्यक्त करने के साधन के रूप में प्रतीक चिन्हों का अंकन करना प्रारंभ किया। इन्हीं प्रतिकों को भाषा का माध्यम बनाकर अपने विचारों तथा भावों का आदान-प्रदान करने लगे। इसी के बढ़ते क्रम में शुभ अवसरों, यातुक क्रिया एवं अनुष्ठानों के अवसर पर मानव पशु, धनुषधारी, वेशधारी, जैसी मानवाकृतियों का भी अंकन किया गया। इस प्रकार प्रारंभ में मनुष्य ने अपनी तत्कालीन जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रतीक चिन्ह या चित्रों का अंकन किया परंतु निरंतर विकासक्रम में इसमें बढ़ोतरी हुई परिणामस्वरूप उनके स्वरूप में भी सौंदर्यात्मकता प्रस्फुटित हुई। माँ के गर्भावस्था से ही बच्चे के संस्कार प्रारम्भ हो जाते हैं, और मनुष्य के मृत्यु के पश्चात तक ये चलते हैं। इन सोलह संस्कारों का हिन्दू धर्म में बहुत महत्त्व हैं। इन संस्कारों के अवसर पर भी लोक कलाओं का निर्माण किया जाता हैं। प्रायः हम सभी अपने गांव, मोहल्ले तथा परिवार में ऐसे छोटे-बड़े पर्वों को देखते हैं, और उसमें प्रतिभाग भी लेते हैं, क्योंकि इसमें हमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ-साथ आनंद की भी प्राप्ति होती है। हम जिस समाज में रहते हैं, वहां के खान-पान, रहन-सहन, वातावरण का प्रभाव हमारी कला तथा संस्कृति पर पड़ता है। हम उससे बहुत कुछ ग्रहण करते हैं, जो हमारी सभ्यता, संस्कृति और परंपरा में परिलक्षित होते है। जैसा की हम सभी जानते हैं, हिंदू धर्म में दिन, तिथि, तथा मास का विशेष महत्व है विशेष तिथि में महिलाएं अनुष्ठान, व्रत इत्यादि पूर्ण श्रद्धा से करती हैं।

आज वर्तमान में मानव समाज अनेक प्रकार के पर्व, व्रत, तथा अनुष्ठानों का आयोजन करता है जिसमें वहां के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन से प्रभावित तथ्यों तथा परंपराओं, आस्थाओं से प्रभावित होकर कुछ चिन्हों, अलंकरणों, चित्रों, मानवाकृतियां, हाथ के थापों तथा चौक आदि का अंकन करता है जो पारंपरिकता के साथ ही समकालीन समाज का भी दर्पण होता है।

लोक पर्व- हिंदू धर्म में विविध प्रकार के पर्व परंपरागत रूप से मनाए जाते हैं। जिसका पालन पीढ़ी दर पीढ़ी होता चला आ रहा है। ये पर्व व्यस्त एवं नीरस जीवन में उमंग एवं उत्साह के रंग बिखरते हैं। लोगों की इन पर्व, पूजा, व्रत एवं अनुष्ठान में असीम आस्था तथा विश्वास निहित है, इसीलिए मानव समाज इनका पूर्ण श्रद्धा से पालन कर संचारित एवं प्रसारित करता है।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार के प्रमुख त्योहारों में रामनवमी, नाग पंचमी, रक्षाबंधन, तीज, दशहरा, विजयदशमी, करवा चौथ, अहोई अष्टमी, दीपावली, गोवर्धन पूजा, भाईदूज, आंवलानवमी व्रत, देवोठान एकादशी, बसंत पंचमी, होली, छठपूजा आदि आते हैं इन त्योहारों के अतिरिक्त शादी विवाह, जन्म संस्कार और अन्य मांगलिक अवसरों को समाज में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इन अनुष्ठानिक एवं मांगलिक पर्वो में विभिन्न प्रकार की लोक कलाएं बनाई जाती है ये लोक कलाएं भूमि तथा भित्ती पर बनाई जाती हैं, ये अनुष्ठानिक लोक कला के अंतर्गत आते हैं। इसके अंतर्गत विभिन्न पर्व, उत्सव, व्रत, पूजन, अनुष्ठान, तिथि एवं त्योहार पर बनाए जाने वाले आलेखन आते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कला के जिन स्वरूपों की चर्चा की गई है, उनमें यहां धूलि चित्र के अंतर्गत सम्मिलित है।

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

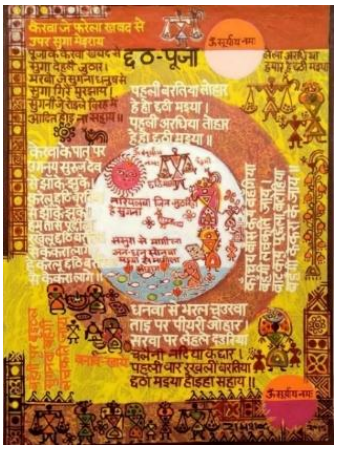

छठ- पूजा

दीपावली

रक्षाबंधन

लोक कला– लोक कला दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें लोक शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही 'जन' के संदर्भ में हुआ है। ऋग्वेद में पुरुष सूक्त में जन शब्द का प्रयोग लोक व्यवहार में किया गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में भी लोक शब्द का उल्लेख किया है। गीता में भी वेद के साथ लोक के महत्व को प्रतिष्ठित किया गया है। इस प्रकार लोक शब्द जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म, संप्रदाय, नगर, ग्राम, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन के दोष भेदों से बहुत ऊपर है। लोक का कृतित्व संपूर्ण मानव के अभ्युदय के लिए होता हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री **डॉ. बार्कर** ने अपने पुस्तक **द स्टडी ऑफ ओरिएंटल फोकलोर** में लोक शब्द की व्याख्या कुछ इस प्रकार की हैं, "आधुनिक सभ्यता से अलग रहने वाले संपूर्ण जाति या समाज ही लोक हैं एवं इस लोक द्वारा विरचित या निर्मित कला ही लोक कला है।" लोक कला का अर्थ लोकमानस या जनजीवन की अभिव्यक्ति से है विद्वानों ने लोक कला को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है-

प्रो. C. L.झा- "लोक कला मानवीय भावनाओं के साथ-साथ चली आ रही है जो अति प्राचीन है"।

लेनिन- कला जन की संपत्ति है, उसकी जडें समाज के अंदर तक पहुंचनी चाहिए। वह जन के लिए बोधगम्य और प्रिय होनी चाहिए।

रामचंद्र शुक्ल- लोक कला धर्म की एक इकाई है जिसे व्यक्ति अपनी धार्मिक भावनाओं को व्यक्त करने में प्रयोग में लाते हैं।

लोक कला के विषय असीमित है, इसमें सौंदर्य प्रसाधानात्मक एवं व्यावहारिक लोकाभिव्यक्ति के स्वरूप आते हैं जिन्हें मुख्यतः चार भागों में बांटा जा सकता है- **आंगिक, वाचिक, निर्मित, अभिनेय।** आंगिक अभिव्यक्ति में भित्तिचित्र, रंगोली, अल्पना, ऐपन, चौक पूरना, मेहंदी लगाना गोदना, वस्त्र छपाई एवं उत्सवों पर अंकित किए जाने वाले विभिन्न आकृतियां सम्मिलित हैं। वाचिक के अंतर्गत लोक संगीत एवं परंपरागत लोक साहित्य आते हैं। निर्मित में खिलौने, काष्ठशिल्प, गृहसजा आदि उल्लेखनीय है। और अभिनय के अंतर्गत लोकनाट्य एवं लोक नृत्य मुख्य रूप से आते हैं।

लोक चित्रकला को निम्न भागों में वर्गीकरण द्वारा समझा जा सकता है-

- **लिखने की कला-** लोक चित्रकला में लिखने का तात्पर्य चित्रांकन से है, इसमें विवाह और त्योहारों के अवसर पर कच्ची भित्तियों को गोबर तथा मिट्टी से लीपकर उसके ऊपर गेरू, हल्दी, पीली मिट्टी, काली मिट्टी, चूने आदि के माध्यम से चित्रांकन करते हैं, जिसे लिखने की कला के नाम से परिभाषित किया जाता है।
- **चीतने की कला-** चीतने का अर्थ है गढ़े पदार्थ अर्थात् गोबर, मिट्टी, भूसी आदि के माध्यम से चित्रांकन करना। मुख्यतः यह चित्र कच्चे घरों की भित्तियों पर बनाए जाते हैं। कहीं- कहीं विशेष अवसर एवं विवाह में घड़े तथा कलश पर भी इससे उभरी हुई आकृति निर्मित की जाती हैं।
- **गोदने की कला-** यह बहुत प्राचीन कला है, इसमें लोग शरीर पर विभिन्न प्रकार के अभिकल्प या अलंकरण सुई की सहायता से बनवाते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण एवं आदिवासी जनजातियां इस सौंदर्यमूलक अलंकारिक प्रथा को अपनाए हुए हैं। यह परंपरा राजस्थान, बिहार एवं उत्तर प्रदेश तथा जनजातीय इलाकों में विशेष रूप से देखी जा सकती है।वर्तमान समय में यह टैटू कला के नाम से बहुत प्रचलित है।

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

- **चौक पूरना या भरने की कला-** चौक का तात्पर्य आंगन से है, तथा पूरना का अर्थ आंगन की भूमि पर रंगों के माध्यम से चित्र रचना करना है। इसे धूल चित्र भी कहा जाता है। त्योहार तथा विशेष अवसरों पर विभिन्न प्रकार के चौक बनाए जाते हैं। अलग-अलग स्थान में इसे अलग-अलग नाम से प्रचलन में लाया जाता है।
- **उकेरने की कला –** इसमें किसी सतह को उत्कीर्ण करके चित्र रचना करते हैं। यह सतह नर्म तथा कठोर दोनों प्रयोग में लाई जा सकती है, इसमें कच्ची मिट्टी से निर्मित मूर्तियां, घड़े, पात्र, पक्षियों, जानवरों तथा लकड़ी के पलंग, दरवाजे, चौखटे आदि पर उत्कीर्ण अलंकरण भी सम्मिलित हैं, जैसे हरितालिका तीज में कच्ची मिट्टी से शिव-पार्वती की प्रतिमा बनना इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

<u>उत्तरप्रदेश तथा बिहार प्रमुख लोक चित्रकलायें</u>-

सांझी – यह कला उत्तर प्रदेश के ब्रज क्षेत्र से संबंधित है। इसका निर्माण शाम के समय किया जाता है यह प्रायः भूमि तथा भित्ति को अलंकृत करने की कला है। यह मुख्यतः तीन प्रकार से बनाई जाती है- पहली भूमि पर सूखे रंगों द्वारा, दूसरी भित्ती पर गोबर आदि के द्वारा, और तीसरी पेपर कट के द्वारा व पेपर कट को फ्रेम करवा कर। प्रथम सांझी मंदिर एवं घर के चबूतरे पर सूखे रंगों जैसे चूना, चावल, कोयला, रोली, पिसी हल्दी का प्रयोग बेल-बूटे, विभिन्न अभिप्राय, फूल-पत्ती, पशु-पक्षी एवं भगवान कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करने के लिए किया जाता है। दूसरे प्रकार में गोबर की सांझी को पितृपक्ष तथा नवरात्रि के अवसर पर बनाया जाता है, इसमें भित्तियों पर गाय के गोबर, रंगीन पन्नी, फूल पत्ती, मिट्टी के रंगे हुए विभिन्न आकारों एवं सजावटी वस्तु का प्रयोग सांझी माता के अंकन में किया जाता है। तीसरे प्रकार की सांझी में पेपर स्टैंसिल को किसी सतह अर्थात कागज या भित्ती पर रखकर ऊपर से रंग से फुहार देकर चित्र निर्मित किए जाते हैं। इस कला परंपरा को विशेष स्थान दिलाने में राम सोनी, शालिनी गोस्वामी, गोपाल लाल, आचार्य सुमित गोस्वामी, विजय सोनी, मोहन कुमार, आशुतोष वर्मा जैसे प्रमुख कलाकारों का योगदान है।

चौक पूरना- इसका उद्देश्य पूजन हेतु देवी-देवताओं का आवाहन कर उन्हें आसन प्रदान करना है। भूमि को अलंकृत करने की यह कला जो आंटे, हल्दी, रोली तथा कहीं-कहीं पर सूखे रंगों द्वारा बनाई जाती है, उसे उत्तर प्रदेश में चौक पूरना नाम से जाना जाता है। कुछ विशेष अवसरों पर ऐपन का भी प्रयोग किया जाता है जो शुभता का प्रतीक है। चौक पूरने का अंकन रीति-रिवाज, पर्व, त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार आदि में विशेष रूप से होता है। अधिकांशत चौक पूजा स्थल, मंडप स्थल, अनुष्ठान स्थल, मुख्य द्वार तथा संस्कार स्थल पर बनाए जाते हैं, इनमें ज्यामितीय अभिप्रायों के साथ-साथ बीच में शुभ प्रतीक जैसे- कमल, शंख, प्रभुपाद, कलश आदि का अंकन किया जाता है। यह गोलाकार, वर्गाकार, षष्ठाकार, अष्ठाकार आदि आकारों में बनायी जाती हैं। बुंदेलखंड आंचल में इसे उरेन कहा जाता है। चौक पूरने के पश्चात इसके ऊपर कलश, देवी देवता की मूर्ति, दीपक, हवनकुंड, एवं पाटा आदि को स्थापित कर पूजन विधि संपन्न कराई जाती है चौक पूर्ण का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है-

मुतियन चौक पुराऔ वारी सजनी,
ढिंग दै आंगन लिपाऔ महाराज।

अनेक क्षेत्रों की महिलाएं घर, आंगन एवं चबूतरे को लीप- पोत कर चौक पूरना एवं कलात्मक बॉर्डर बनाने की परंपरा को आगे बढ़ा रही हैं। यह भाव लोकगीतों में इस प्रकार अभिव्यक्त होता है- **तिल के फूल, तिली के दाने, सूरज ऊबे बड़े भुनसारे।**

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

ऊर न पाये वारे सूरज, सब घर हो गऔ लिपना-पुतना।।

अरिपन- बिहार के मिथिला क्षेत्र में भू अलंकरण वाले धूल चित्र ही अरिपन कहलाते हैं। अरिपन मांगलिक अवसर, लोकोत्सव, संस्कृतिक एवं धार्मिक अवसरों पर बनाए जाते हैं, परंतु तुलसी चौरा स्थान पर नित्य रूप से भी बनाई जाती है। इसे बनाने में पिसे हुए चावल के घोल का प्रयोग किया जाता है। इस अलंकरण को प्रायः स्त्रियां एवं कन्याएं बनती हैं इसे बनाने से पूर्व जमीन को धो पोछकर या गोबर से लिप कर तैयार कर लिया जाता है। विभिन्न अवसर पर भिन्न-भिन्न नाम से अरिपन का अंकन किया जाता है, जैसे विवाह के अवसर पर अश्विने अरिपन, दशहरे पर कोसा अरिपन, नाग पंचमी पर नागफड़ अरिपन, मकर संक्रांति पर संक्रांति अरिपन, भाईदूज पर गोलाकार अरिपन, सत्यनारायण पूजा पर अष्टदल अरिपन प्रमुख है। इसमें शुभ प्रतीक के रूप में सूर्य, चंद्रमा, स्वास्तिक, पदचिन्ह, बेल-बूटे, पान, बांस, मछली, शंख, कलश, नारियल, कमल आदि का अंकन किया जाता है।

मधुबनी चित्र शैली- बिहार के मधुबनी एवं दरभंगा जिलों में शताब्दियों से अंतरराष्ट्रीय लोकप्रियता प्राप्त मधुबनी चित्रों का निर्माण हो रहा है, जिसे मिथिला लोक चित्रकला के नाम से जाना जाता है। यह शैली भित्ती पर बनाई जाती है, इसमें यहां के जनमानस की धार्मिक आस्था व विश्वास है। यह चित्रण शैली मांगलिक अवसरों एवं पारंपरिक अवसरों पर बनाई जाती है इसमें धार्मिक विषयों जैसे- शिव विवाह, राम विवाह, गौरी पूजन, सीता पुष्प वाटिका, मां काली, गणेश जी, मां दुर्गा, कृष्ण लीला एवं कोहबर आदि का अंकन बहुत ही सौंदर्य पूर्ण ढंग से किया जाता है। मधुबनी में धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक एवं पौराणिक विषयों पर दृश्यंकन बहुतायत रूप में देखने को मिलते हैं। मधुबनी कला शैली को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि दिलाने में जगदंबा देवी, सीता देवी, गंगा देवी, महा सुंदरी देवी, दुलारी देवी जैसी महिला कलाकारों का प्रमुख योगदान है।

मंजूषा शैली- यह भागलपुर बिहार की लोक चित्रकला शैली है जो मंजूषा पर बनाई जाती है। यह शैली कुंती के पौराणिक कथा से संबंधित है। जब कुंवारी कुंती ने कर्ण को जन्म दिया, तो उसने कर्ण को मंजूषा में रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया इसी कारण इस शैली का नाम मंजूषा पड़ा। इस शैली का चित्रण स्थानीय देवी मनसा की पूजा के अवसर पर किया जाता है। इसमें मनसा देवी की चार बहनों सहित अमृत कलश, गोद घटवार, चंद्राधार आदि का अंकन किया जाता है। यह आकृति प्रधान कला है। जिसमें विषय से संबंधित पृष्ठभूमि का अंकन किया जाता है, और चटख रंगों का प्रयोग होता है। इससे संबंधित एक अन्य लोक कथा प्रचलित है, जिसमें एक व्यापारी नाग पूजा का विरोध करता है, परिणामस्वरुप उसके पुत्र बाला को सुहागरात वाले दिन नाग ने डस लिया उसकी पत्नी बिहुला ने एक मंजूषा के आकार के नाव बनाकर उसे चित्रांकित करवाया और पति के शव को उसमें रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया और स्वयं सांपों की अधिष्ठात्री मनसा देवी की उपासना में बैठ गई, जिससे देवी प्रसन्न होकर बिहुला के पति को जीवनदान देती हैं तब से इस क्षेत्र की स्त्रियां मंजूषा सुसज्जित कर नदी में प्रवाहित करती हैं या मनसा देवी मंदिर में समर्पित करती हैं। सुहाग की रक्षा के लिए स्त्रियां इस व्रत एवं उपासना को करती हैं। मनोज पंडित, चक्रवर्ती देवी, निर्मला देवी जैसे कलाकारों ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया।

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

टिकुली कला- यह बिहार के पटना से मौर्य काल में प्रारंभ हुई एक समृद्ध एवं पारंपरिक लोक कला है। उस समय स्त्रियों ने बिंदी को अपने श्रृंगार में शामिल किया। टिकुली बिंदी का एक स्थानीय शब्द है, जो स्त्रियों की सौंदर्यरूपी श्रंगार बिंदी से प्रभावित थी। शुरुआती दौर में टिकुली पर कलाकृतियों का निर्माण किया जाता था, धीरे-धीरे टिकुली कला का स्वरूप परिवर्तित होता गया। इसके विषय भगवान कृष्ण से संबंधित है। प्रारंभ में इसे कांच के गोल टुकड़ों पर बनाया जाता था। मध्यकाल में मुगलों ने इसे काफी प्रोत्साहन दिया। मुगलों के पतन के पश्चात टिकुली कला भी अपना वर्चस्व खोने लगी परंतु आजादी के पश्चात पद्मश्री उपेंद्र महारथी के सफल प्रयासों ने इस कला को पुनर्जीवित किया अपने प्रयोगों के दौरान इस पारंपरिक शैली को इन्होंने हार्डबोर्ड पर उतारा। 21वीं सदी में इस कला को कलाकार अशोक कुमार विश्वास ने विशेष ऊंचाइयों पर पहुंचा विश्वास ने इस सिद्धांत को आत्मसात कर अपनी इस कला ज्योति को अन्य कलाकारों में फैलाकर अनेको दिए प्रज्वलित किए।

इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश तथा बिहार में गोदना कला, महावर लोक अभिकल्प, मेहंदी कला, उपला कला, कोहबर भित्ति चित्रण, थापा कला आदि कलाओं का प्रचलन परंपरागत रूप से किया जाता है। जिसमें यहां के जनमानस का विश्वास, आस्था एवं समर्पण है बड़े ही उत्साह एवं उमंग के साथ स्त्रियां विशेष पर्व पर बढ़-चढ़ के इन लोक परंपरागत कृतियों में हिस्सा लेते है। जिससे घर के युवा भी प्रभावित होते हैं और इस परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, एवं बड़े ही सौन्दर्यात्मक रूप से अपने घर आंगन एवं मंदिर को सुसज्जित करते हैं।

कलात्मक अभिप्राय – जब हम लोक कला में कलात्मक या कालागत अभिप्राय की बात करते हैं तो कुछ बिंदु हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाते हैं जैसे उद्देश्य, संदेश, भावनाएं, सांस्कृतिक मूल्य और परंपराएं। जिसे कलाकार अपने चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, जिसके लिए वह कला के विभिन्न तत्वों और सिद्धांतों आदि का प्रयोग करता है यह मात्र केवल सौंदर्यात्मक ही नहीं होता, अपितु इनका संबंध मानव जाति के सामाजिक, पारंपरिक, धार्मिक और व्यावहारिक पक्ष को जीवंत बनाए रखने से भी होता है।

जब घर की स्त्रियां किसी त्योहा, मांगलिक अवसर, अनुष्ठानों तथा पूजन व्रत के अवसर पर किसी सौंदर्य पूर्ण चित्र कृति को सृजित करती हैं तो उसमें उनकी मनोभावनाएं भी अभिव्यक्त होती हैं। इन अवसरों पर महिलाएं तथा कन्याएं कुछ प्रतीकों, अलंकारों, चिन्हों, ज्यामिति आकारों, बेल बूटों, पशु पक्षियों तथा देवी देवताओं की आकृतियों को अंकित करती हैं जिसका संबंध सिर्फ मात्र साज- सज्जा ही ना होकर इसका उद्देश्य किसी न किसी प्रतीकात्मक मान्यताओं, आस्थाओं तथा रहस्य से जुड़ा होता है। जो इस लौकिक संसार में अलौकिक वातावरण को परिकलपित करता है तथा शुभता को बढ़ाता है, जो मानव समाज को पुनः ऊर्जावान कर मन को भक्तिभाव से भरकर आत्मबल प्रदान करता है। प्रत्येक चिन्ह का अपना एक अलग महत्व है जैसे उत्तर प्रदेश एवं बिहार क्षेत्र में विवाह के अवसर पर कोहबर कला में आदर्श दांपत्य के रूप में शिव पार्वती तथा मांगलिक प्रतीक के रूप में सूर्य, चंद्रमा, मछली, कछुआ, हाथी को आसपास चित्रित करते हैं, तथा वंश वृद्धि या जनन शक्ति के रूप में बांस, पुरइन पत्ता, पान, कमल तथा मिथुन आकृतियां आदि बनाई जाती हैं इ सके साथ ही कोहबर में कुछ पंक्तियां लिखी जाती हैं एक विवाह गीत में कोहबर में लिखे जाने का वर्णन है-

काहे क मोर बाबा काहे के खोजयला दमाद,

काहे क मोर बाबा पुतली खिलउला,

काहे क खोजला दमाद।

मैथिली अर्थात् सीता के विवाह में भी कोहबर चित्रण का वर्णन मिलता है –

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरी सुअसिन्ह सुख पाइकै।

https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 08, PP 273-304 Nov. 2025 (Total PP 32)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइकै।।

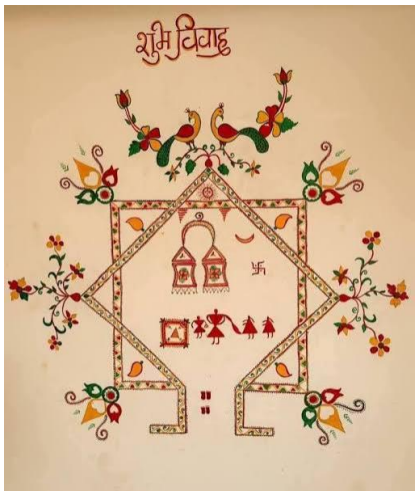

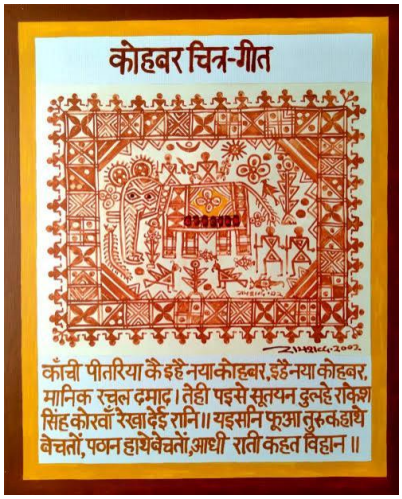

शादी विवाह के अवसर पर हाथ के थापे लगाने का भी प्रचलन बहुतायत में देखने को मिलता है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में हलछठ या ललहीछठ पर्व मनाया जाता है।जिसमें अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग परंपराएं हैं- जैसे फतेहपुर तथा कानपुर क्षेत्र में घर की भित्ति पर गोबर से ज्यामिति आकारों की सहायता से हलछठ माता का चित्र बनाया जाता है तथा उस पर विभिन्न प्रकार के चित्र, आकृतियां, डोली तथा पुतले का निर्माण किया जाता है साथ ही खिलौने बनाए जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार गोवर्धन पूजा में गोवर्धन धारी कृष्ण को गोबर से प्रतीक स्वरुप बनकर अलंकृत किया जाता है तत्पश्चात उनकी पूजा को संपन्न किया जाता है। लोक कला के कलात्मक अभिप्राय में कई पहलू देखने को मिलते हैं जैसे कुछ कलाओं का उद्देश्य धार्मिक और अनुष्ठानिक होता है तो ऐसी कला में धर्म एवं आराध्य देव से संबंधित प्रतीक, अलंकरण तथा देव एवं देवियों के मूर्त तथा अमूर्त बिम्ब बनाए जाते हैं। इसके उत्कृष्ट उदाहरण मथुरा मंदिरों में सांची कला परंपरा के रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। कुछ लोक कलाएं सांस्कृतिक परंपरा के रूप में बनाई जाती हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। इसमें कुछ ऐसे बिम्ब प्रदर्शित होते हैं जो किसी समुदाय विशेष से संबंधित होते

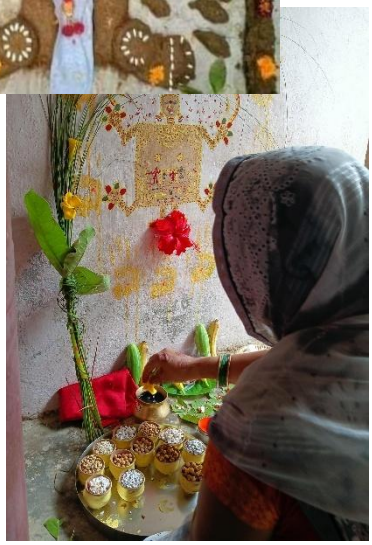

हैं। सामाजिक जागरूकता एवं शिक्षा जैसे विषयों में अक्सर मानवाधिकारों, सामाजिक मुद्दों, स्वास्थ्य जैसे विषयों का अंकन होता है। जीवन मूल्य की अभिव्यक्ति से संबंधित लोक कला में जीवन के सत्य असत्य, शुभ अशुभ जैसे मूल्य को स्पष्ट रूप से निरूपित कर जन सामान्य को प्रभावित किया जाता है। व्यवहारिक या उपयोगितावादी कलाओं में मात्र सजावटी वस्तुएं ही शामिल नहीं है बल्कि इसमें दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएं जैसे बर्तन, टोकरी, कपड़े आदि वस्तुएं भी सम्मिलित हैं मुख्यतः लोक कला का कलागत अभिप्राय धार्मिक ही होता है इन सभी अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए कला के कुछ तत्वों का उपयोग किया जाता है, बिना इनके प्रभावपूर्ण प्रस्तुति संभव नहीं है। जैसे प्रतीक, ज्यामिति आकार, अलंकरण, रंग, रेखा, मानवाकृति आदि। लोक कला में सबसे महत्वपूर्ण तत्व प्रतीक होते हैं जिनके पीछे गूढ़ रहस्य निहित होता है, जो मूर्त अमूर्त किसी भी रूप मे प्रभावशाली होते हैं जो सीधे तौर पर मनुष्य को प्रभावित करते हैं बिना इनके लोक कला की कल्पना करना ठीक वैसे ही है जैसे बिना सूरज के रोशनी की प्राप्ति की कामना करना, क्योंकि बिना सूर्य के भौतिक रूप से बल्ब इत्यादि के द्वारा प्रकाश तो प्राप्त हो सकता है परंतु वास्तविक ऊर्जा एवं प्रदीप्तमान प्रकाश की कल्पना वास्तव मे असंभव हैं।

निष्कर्ष- शास्त्रों में कहा गया है-

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित दुःखभग्वेत।

ठीक इसी तरह एक स्त्री भी अपने परिवार की मंगल कामना करती है कि उसके परिवार के प्रत्येक सदस्य स्वस्थ रहें तथा उन पर किसी भी प्रकार का कोई संकट ना आए इसीलिए स्त्रियां विभिन्न पर्वों एवं त्योहार पर ईश्वर से परिवार के लिए मंगल कामनाएं करती हैं लोक पर्वों की सफलता के लिए विभिन्न प्रकार के चौक, अलंकरण, आकृतियां, ज्यामितीय अभिकल्प प्रतीकों तथा चिन्हो को दृश्यांकित करती हैं।

उत्तर प्रदेश तथा बिहार की कला परंपरा में जो लोक चित्रकलाएं सदियों से चली आ रही हैं वर्तमान में उनके स्वरूप में कुछ परिवर्तन भी आया है जो स्वाभाविक भी है क्योंकि बदलते समय, बाजारीकरण और डिजिटलीकरण के कारण इन कलाओं को विशेष स्थान प्राप्त हुआ परंतु कहीं ना कहीं इन कलाओं ने अपनी स्वाभाविकता और वास्तविक सौंदर्य को खो दिया। उनके वास्तविक स्वरूप और सौंदर्य को हम पारंपरिक स्वरूप में ही अधिक देख पाते हैं, परंतु इस बदलाव ने इन कलाओं और कलाकारों को काफी कुछ दिया भी है। अब इन चित्रों के डिजिटल प्रिंट तथा वस्त्र अलंकरण में इन डिजाइनों को काफी सुंदर ढंग से छापा जाता है, जो वर्तमान समय में काफी पसंद भी किया जा रहा है। मधुबनी के चित्रों से सुसज्जित साड़ियां, कुर्ते आदि बाजार में उपलब्ध है। वर्तमान में सांची के स्टैंसिल को कंप्यूटर की सहायता से भी निर्मित किया जा रहा है। रंगों में भी काफी बदलाव आए हैं जो पहले खनिज तथा वानस्पतिक रंगो द्वारा बनाया जाता था अब उनके स्थान पर नए-नए प्रकार के आर्टिफिशियल रंग बाजार में उपलब्ध है।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार के लोक पर्वों में बनाई जाने वाली लोक कलाओं का इतिहास भले ही सदियों पुराना है, परंतु उनकी मौलिकता परंपरा तथा स्वरूप में खास बदलाव नहीं आया है। आज भी लोग तीज त्योहारों को उसी भाव से मनाते हैं कुछ कलाएं जैसे थापा कला, कोहबर कला, मेहंदी कला, गोदना कला, अल्पना आदि आज भी भारत के कई हिस्सों में पारंपरिक रूप से बनाई जाती हैं।

उत्तर प्रदेश के राम शब्द सिंह, आशुतोष वर्मा, शालिनी गोस्वामी तथा बिहार की दुलारी देवी, जगदंबा देवी, सीता देवी, महा सुंदरी देवी, पुतली देवी, चिमनी देवी, शांति देवी, जमुना देवी जैसे कलाकारों ने पारंपरिक लोक कलाओं को विश्व की शीर्ष कलाओं में दर्ज कराया इस प्रकार यह सभी कलाएं हमारी मूल धरोहर हैं जिन्हें हमें भूत, वर्तमान तथा भविष्य के लिए संरक्षित करना है, क्योंकि यह हमारे जीवन को सुखमय और आनंदित करती हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि "मानव जीवन के सभी कृत्य 'शुभ' से प्रारंभ होकर 'सुख' के लिए समाप्त होते हैं।"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूंची

- शर्मा डॉ. रीता, बिहार की कला परंपरा, नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, 2018
- मांगो प्राणनाथ भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2023
- समकालीन कला, संपादक- डॉ.ज्योतिष जोशी, ललित कला अकादमी, अंक 46-47, 2015, ISSN 2321-1083

- गुप्त डॉ. हृदय, देशज कला, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2018
- गुप्ता वंदना, पूर्वांचल के त्योहारों में प्रयुक्त कलात्मक प्रतीकों एवं चिन्हों का सौन्दर्यात्मक महत्व, ललित कला एवं संगीत विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, 2010
- सिंह श्रीमती आंचल & तिवारी डॉ. अलका, लोक संस्कृति में लोक कला धरोहर के विभिन्न रूप, aryavart shodh vikas patrika, ISSN No.: 2347-2944,april- june- 2022
- गौतम सुरेंद्र कुमार, भारतीय लोक कला: प्राचीन काल से आधुनिक युग, International Journal of Social Science Research ISSN: 3048 - 9490 Jan-Feb 2024
- गुप्ता डॉ. अनिल & यादव प्रतिभा, लोक कला में ज्यामितीय रूप, International Journal of applied research, ISSN: 2394-7500, 2021
- पाल सप्तमी, मांगलिक अवसरों पर बनने वाली लोककला (चौक पूरना) उत्तर प्रदेश के संदर्भ में, shodhkosh: journal of visual and performing arts, ISSN- 2582-7472, jan-jun, 2023